भारतीय संस्कृति के प्रतीकों में कमल और अश्व

श्रीमती सुधा अग्रवाल, वाराणसी, (उ० प्र०)

कमल निर्माण—शक्ति रचनाका प्रतीक है। पृथ्वीकी प्रारम्भिक कल्पनामें पृथ्वीको चतुर्दल कमल अथवा चारपंखुड़ी वाला कमल माना गया है। कमलके बीच कर्णिका या बीज रूपमें सुमेरु पर्वतकी स्थिति है। ऐसा मानते हैं कि यहाँ विश्वकी अनेक वस्तुओं और भावोंके बीजोंका जन्म होता है, इसलिये इसे **विश्वबीज मातृका** भी कहते हैं।

कलाके अतिरिक्त, भारतीय धर्म और दर्शनोंमें भी प्रतीक रूपमें कमलका ज्यादा महत्त्व है। यह अथाह जलोंके ऊपर तैरते हुये प्राण या जीवनका चिन्ह है। सूर्यकी किरणें ही कमलको जगाती हैं। ऋग्वेदमें सूर्यको ब्रह्मका प्रतीक कहा गया है। (ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिः ऋ० २३४८) सूर्य प्राणका वह रूप है जो भूतोंमें समष्टिगत प्राण या जीवन का आवाहन करता है। यह विष्णुकी नाभिसे उत्पन्न होनेवाले बलोंका प्रतीक था जिनसे प्राणका संवर्धन होता है। इसी नाभिसे उत्पन्न कमल पर सृष्टिकर्ता ब्रह्माका विकास हुआ है (ब्रह्म ह वै ब्रह्माणं पुष्करे ससृषं, गोपथ ब्रा०, १।१। १६)। कमलके पत्ते या पुरइन बेलको सृष्टिकी योनि या गर्भाधानकी शक्ति कहा गया है। (योनिर्वै पुष्करं पर्णम्, श० ब्रा० ६।४।१७)। कहीं कमत विराट् मनका प्रतीक है तो कहीं व्यष्टिगत प्राण शक्तिका। भागवतमें सृष्टिका जन्म कमलसे माना गया है और संसारको **भू-पद्मकोष** कहा गया है। भागवत दो प्रकारकी सृष्टि मानते हैं—एक पद्मजा और दूसरी अण्डजा। पद्मजा जैसा कि नामसे ही स्पष्ट है, क्षीरशायी विष्णुकी नाभिसे होती है जबकि अण्डजा सृष्टि हिरण्यगर्भसे। हिरण्यगर्भकी मान्यता वैदिक है और पद्मकी मान्यता भागवत। वेदके अनुसार पृथ्वी पर अग्नि और द्युलोकमें आदित्य—ये दो बड़े पुष्कर हैं। हरिण्यगर्भकी सृष्टि अग्नि पर और पद्मजाकी सृष्टि जलों पर निर्भर है। हिरण्यगर्भ अग्नि और सोमके प्रतीक थे। पूर्णघटमें अण्डजा और पद्मजा—दोनों कल्पनाओंका समन्वय है। मातृकुक्षिसे उत्पन्न होनेवाले शिशुका प्रतीक कमल था। उत्पल, पुण्डरीक, कल्हार, शतपत्र, सहस्रपत्र, पुष्पक, पद्मक इत्यादि नामोंसे कमलका उल्लेख होता है कमलको **सूरजमुखीके फुल्ले** भी कहते हैं।

रूपककी भाषामें सारी जलराशिको स्त्री-शरीर और कमल योनिवत् माना गया है। शास्त्रीय आधार पर भी, योनिस्थ जरायुका आकार कमल पुष्पकी तरह माना गया है। **पुष्पवती** होनेका आधार यही कमल है। **कमल-कुलिश साधना** भी कमलके सृष्टिद्वार होनेका पोषक है। स्त्रीत्व और सृष्टिकी भावनाके कारण ही पौराणिक कल्पनामें इसे देवीका संसर्ग प्राप्त हुआ। वेदोंमें देवी उपासना नहींके बराबर हैं। फिर भी, अग्निका उत्पत्तिस्थान कमल ही है। इसीका विकास बादमें पद्मा देवीके रूपमें हुआ। यद्यपि ऋग्वेदमें किसी भी देवीकी आराधना नहीं है, फिर भी उसके सम्पूर्ण रूपमें सर्वप्रथम इसका उल्लेख है। देवीके दो नाम हैं—**श्री** और **लक्ष्मी**। राजगण धर्मपत्नीके अतिरिक्त राजलक्ष्मीसे परिणती माने जाते थे। पद्मादेवी विभिन्न संज्ञाओंसे जानी जाती थी जैसे पद्मसम्भवा, पद्मवर्णी, पद्मअरुण, पद्माक्षी, पद्मिनी, पद्मालिनी और पुष्करिणी इत्यादि। अतः लक्ष्मीकी रूपकल्पनाका आधार कमल ही होता है। इन्हीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संज्ञाओंके साथ इन्हें विष्णुपत्नी और हरिवल्लभा भी कहा गया है। कमलसे उत्पन्न कमला विष्णुकी शक्ति होनेके कारण वैष्णव कला और वैष्णव कल्पनाकी शक्ति बन गयी। विष्णुके चार आयुधोंमें होनेके कारण विष्णुके अंकनके साथमें कमल सर्वत्र अंकित हुआ है।

कमलप्रिय पद्मप्रिया देवीकी मूर्तियाँ (ई० पू० दूसरी शतीके) साँची और भरहुतके द्वारों और छतोंमें खुदी हुई हैं। भरहुतकी पन्द्रहवीं आकृति गजलक्ष्मी है। जिसके चरण अनेक—दल कमल पर हैं। इसी कमल नालके पाससे दो भारी सी नालें इधर-उधर गई हैं जो पुनः दो भागोंमें बँट गयी हैं। दोनों ओर दो कमल गर्भ पर दो हाथी खड़े हैं और एक-एक कमलका पत्ता बना है। यह गोलाकार कृति है और गोलाकृतिको चार कमल घेरे हुये हैं। अखिल रूपकी ही एक अन्य ऋचामें इस पद्माके मूल **श्रीलक्ष्मी**की 'प्रजानो भवसि माता' और 'क्षमा' कहा गया है। क्षमा पृथ्वी है और पृथ्वी हिरण्यगर्भा। कमलको भी हिरण्यगर्भ माना गया है।

बसाढ़से प्राप्त एक मूर्त्तिमें विकसित-अविकसित कई प्रकारके कमल हैं परन्तु प्रतिभाओंके पर लगे हैं। साधारणतया मेसीपोटामियाकी मूर्त्तियाँ पक्षवती होती हैं जबकि भारतके लिये यह नवीन बात है।

मोहेन जो-दड़ो और बौद्ध कलामें कमल

मोहेन जो-दड़ोकी सभ्यताके प्राप्त प्रतीकोंमें से शैव उपासनाका द्योतक लिंग प्रमुख हैं। शिवकी पूरक पार्वती रूपमें वहाँ कमलधारिणी देवीकी मूर्ति पाई जाती है। ऐतिहासिककी दृष्टिसे यह ऋग्वेदके पहलेकी है। मूर्त्तिके उरोज उन्नत हैं जिससे मातृत्वका बोध होता है इसी कारण इसे जगत् जननी कहा गया है। यह प्राप्तकृति सबसे प्राचीन है जिसमें कमलका उपयोग हुआ है। निःसन्देह रूपसे इस बातको स्वीकार किया जा सकता है कि मातृत्व और कमलका सम्बन्ध अत्यधिक प्राचीन है। यही भावना बादमें ब्रह्म और लक्ष्मीसे सम्बद्ध देखी जाती है जिसके साथ भी प्रतीक रूपमें कमल और सृष्टीका भाव सन्निहित है।

बौद्धकलामें भी सर्वत्र कमलसे युक्त देवी दृष्टिगोचर होती है। कभी-कभी प्रतीक रूपमें कमल द्वारा ही उसकी सत्ता व्यक्त की गयी है। प्रमुखतः देवीकी संज्ञायें हैं—**पद्महस्ता** और **पद्मरागिणी**। महायान बौद्धधर्ममें 'पद्मपाणि' बोधिसत्व हैं जिन्होंने बुद्धोंकी सहायता की। नवीं शताब्दीकी नेपालसे प्राप्त एक प्रतिमाके हाथमें कमल है और यह वरद मुद्रामें है। मृणाल उंगलियोंमें उलझने के बाद भी कुहनी पर आकर टूट गया है। यहाँपर कमल बोधिसत्वकी स्निग्ध-शान्त मनोवृत्ति, असीम दया, अलौकिक देवत्व और पवित्र दैवी सौन्दर्यके प्रतीक स्वरूप है। भारतीय बौद्ध परम्पारामें उत्तर मध्यकालीन पद्मपाणि या अवलोकितेश्वरकी मूर्तिकी पीठिका भी कमलयुक्त है। सम्भवतः वैष्णव प्रभावसे ही प्रभावित होकर शिल्पियोंने बौद्ध प्रतिमाओंमें कमलको पीठिका रूपमें तैयार किया हो। महायान बौद्धधर्मकी सर्वश्रेष्ठ देवी प्रज्ञा पारमिताकी एक प्रतिमामें, जो १३ वीं शतीकी है तथा जावासे प्राप्त हुई है, पीठिका कमलकी बनी है। यह देवी बुद्धों और बोधिसत्वोंकी मूल शक्ति है।

बादकी कलामें कमल कई रूपोंमें अंकित हुआ। गोमूत्रिकाओं (बेलों) में कमलका प्रयोग बहुतायतसे होता था। जहाँ कहीं भी अलंकरणकी आवश्यकता होती थी और सुविधा होती थी, वहाँ कमल किसी-न-रूपमें जरूर अंकित किया जाता था। प्राचीन कालमें स्त्रियोंके श्रृंगारका प्रधान पुष्प कमल था जो हस्ते लीला कमलसे प्रकट है। अजन्ताके चित्रोंमें तो कमलकी इतनी बहुलता है कि चित्रकारको चित्रकारी करते समय बस एक ही पंक्ति 'नव कंज लोचन कंज मुखकर कंज पद कंजारुणम्' याद आ रही थी। वैसे भी, भारतीय कवि, चित्रकार, साहित्यकार आदिने कमलकी कोमलता और सुन्दरताका मुख्य आधार माना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। अशोक स्तम्भकी लाटको कमल पंखुड़ियोंसे ही अलंकृत किया गया है। गांधार शैलीमें भी कमलकी गोमूत्रिकायें (बेलें) विद्यमान हैं। कहीं-कहीं विकसित कमलके अन्दर मानवीय आकृतियाँ अंकित मिलती हैं। एक मूर्तिमें शेषशायी विष्णुके पैरके पास आधार रूपमें कमल अंकित है। हंसके साथ कमल तो बहुत ही ज्यादा सहज सुलभ है। दमयन्तीने कमल पत्र पर पाती लिखकर हंस द्वारा नलके पास भेजी थी।

भरहुत और साँचीके रिलीफोंमें हाथी मायादेवीके गर्भमें है और उसके मुखसे टेढ़ी-मेढ़ी कमलकी बेल निकली है। यह मुण्डेरों और चौखटोंके किनारे-किनारे फैली हुई है और उसपर अनेक तमगे, जन्म-कथाएँ तथा फूलोंकी सजावट है। अनेकानेक पत्तियों, कलियों, विभिन्न विकसित पुष्पों तथा बीच-बीचमें बत्तखोंवाले कमलके पौधोंका अत्यधिक फैलाव भरहुत, साँची, उदयगिरि और अमरावती—हर जगह पाया जाता है। आधिक्यके साथ कोमलता तथा चपलताके साथ गांभीर्यका सम्मिश्रण यूरोपीय नारीकी याद दिलाता है। साँचीके पूर्वी तोरणके बाँयें खम्भे पर कमलके पौधोंके पकने तककी अवस्थाओंका बहुत ही सुन्दर चित्रण है।

कमलके फूलते हुए पौधेका लयात्मक ढंगसे झूमना भारतमें जीवनकी अपेक्षा लयका प्रतीक है। साँचीके पश्चिमी द्वार पर कमलकी बेलके घने पत्तोंके मध्य वन्य पशुओंकी प्रकृति सुन्दरतम है।

कमल-लता पौधा-प्रतीकोंमें सबसे अधिक प्रचलित और प्रभावशाली है। यह कमल-लता मन्थर, अबाध और प्रचुर भारतीय वनस्पति जीवनका प्रतीक है। भारतीय संस्कृतिमें कमलकी स्वाभाविक प्रचुरता का एक ग भीर अर्थ है। संयुक्तनिकायमें लिखा है, "हे बन्धु, जैसे कमल पानीमें उगता है, पानीमें ही फलता है, पानीकी सतहसे ऊपर उठता है और फिर भी पानीकी सतहसे नहीं भींगता, वैसे ही हे बन्धु, तथागत संसारमें जन्मे इस संसारमें बढ़े, इसी संसारमें ऊपर उठें और फिर भी इस संसारसे अप्रभावित रहे।" बौद्ध कल्पनामें ब्रह्माण्ड है बुद्धके अनेकानेक जन्म और अमर्त्य रूप। ये कमलके पौधेके डंठलों और फूलोंके समान सुन्दर और शाश्वत हैं तथा सांसारिक राग, द्वेष और मोहके कीचड़ और गन्दगीसे उगते हैं। संसार और निर्वाण, अच्छाई और बुराई, सुख और दुःखके चक्र यथार्थकी क्षणिक बूँदें अथवा उफान हैं। जीवन यथार्थ और ज्ञात सीमाओंसे परे एक पूर्णताकी ओर सदैव गतिशील है। स्वर्गिक सफेद हाथी, जिसके मुखसे कमलकी बेल निकलती है, यह धीरे-धीरे बिना रुके लयात्मक ढंगसे प्रचुरताकी सृष्टि करती है, निर्वाण की शान्तिका नहीं, वरन् जीवनकी अबाधित हर्षोत्फुल्ल असीम आकांक्षा प्रतीक है। प्रकृतिकी व्यवस्थामें आत्माभिव्यक्ति और आत्मपरात्परताके बोधिसत्त्वका प्रतीक है।

अजन्ताके चित्रोंमें जो बोधिसत्त्व हाथमें नीलकमल लिये हुए हैं, संपुंजनके केन्द्रमें अवस्थित है। यहाँ सिरका तनिक भव्य झुकाव, गतिके लिए तनिक स्पन्दित शान्त मुद्रा तथा हाथकी उत्कृष्ट भंगिमा संसारके प्रति बोधिसत्वकी प्रगाढ़ करुणाके प्रतीक हैं। बोधिसत्व पद्मपाणि मानवके शारीरिक सौन्दर्यका ही नहीं, वरन् आध्यात्मिक और अमूर्त सौन्दर्यका उत्तम नमूना है। कमलकी चौकियों पर खड़ी कुछ बुद्धकी प्रतिमाएँ अमरावती, मथुरा और गांधार—तीनों स्थानों पर मिलती है। सूर्यकी कुछेक खड़ी मूर्तियोंमें धुरीकी जगह कमलने लेली। गुप्तकालके बाद दो कमलोंसे युक्त मूर्त्ति भी पूज्य व मान्य हुई।

रानीगुप्फा और गणेशगुप्फाके शिल्पकारोंको कमलके फुल्लोंसे विशेष रुचि थी, अतः वेदिका तथा शोभापट्टीमें उनकीरुचि प्रदर्शित हुई हैं।

खण्डगिरी पहाड़ी पर अनन्त गुफामें कपिशीर्षक या पंचपट्टिकाके बीचमें त्रिकोणाकृतिका एक सुन्दर कमल पुष्प अंकित है जिसकी बेलमें वेदिका, पुनः कमल, फिर वेदिका इस प्रकारका क्रम है। इनमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुछ ऐसे भी स्तम्भ हैं जिनके सिरे पर औंधे रखे हुये कमलोंके लहराते पत्ते वेसनगरके स्तम्भ-शीर्षके सदृश ही हैं। एक अर्धस्तम्भ पर बारह हंस श्रेणीवद्ध हैं, जिनकी चोंचमें कमल पुष्प है। हंस उड़ते हुए दिखाएँ गये हैं। कमलों पर खड़ी श्री लक्ष्मीकी मूर्ति है। देवीके दोनों ओर उठते हुये कमलों पर दो हाथी देवीके अभिषेकके लिये उद्यत दर्शाए गये हैं।

नासिककी गुफामें गोतमी पुत्र बिहारके स्तम्भके अत्यधिक सुन्दर दिखनेका कारण है उसका पद्मवर वेदिकामें आवेष्टित होना। वेदिकाके खम्भों और सूचियों पर कमलकी सजावट मथुराके कंकाली टीलेसे प्राप्त पद्मवर वेदिकाके सदृश ही है।

लखनऊके राज्य संग्रहालयमें जैन आयागपट्ट पर मध्यमें सर्पफणी पार्श्वनाथ प्रतिमाके दोनों ओर व्यक्ति हाथ जोड़कर खड़े हैं। बाहर गोलाईमें अंगूर, तथा कमलके बेलकी सजावट है। यह प्रतिमा कुषाण कालकी प्रथम शताब्दीकी है। इसी संग्रहालयमें लगभग १० वीं शताब्दीकी उरई (जालोन) से प्राप्त पद्मासनमें ध्यानस्थ तीर्थंकरके दोनों ओर कंधों पर बाल हैं। प्रतिमा कमलासन पर है। संभवतः प्रतिमा ऋषभनाथकी है। ९वीं शताब्दीकी सर्वतोभद्र तीर्थंकर प्रतिमामें तीन और अन्य तीर्थंकर तथा एक ओर ऋषभनाथकी दिगम्बर प्रतिमा है। यह एक ओर कमल और दूसरी ओर अंगूरकी वेलसे सुशोभित है। एक अन्य वेदिका स्तम्भ पर नीचे कमल तथा उसके ऊपर वेल है। यहीं पर गुप्तकालका लता, कमल तथा मणिबन्ध आदिसे अलंकृत स्तम्भ भी है।

उपनिषदोंके अनुसार कमल सम्पूर्ण उत्पत्तियोंसे भी पूर्ववर्ती है। विद्याकी देवी 'सरस्वती' की स्तुति पद्मासने संस्थिताके उच्चारणोंसे की जाती है। ऐतरेय ब्राह्मणमें अश्विनी कुमारोंकी नीलवर्णका कमलहार पहने बताया गया है। भारतका राष्ट्रीयपुष्प कमल भावगतकी प्राचीनतम संस्कृतिसे सम्बन्धित है।

अश्व—भारतीय संस्कृतिमें कमल सदन अश्वका भी अत्यधिक जिक्र हुआ है। कहीं कला रूपमें, कहीं यज्ञके लिए, तो कहीं सिक्कों पर अश्वांकन है। प्राग् ऐतिहासिक कालके नव पाषाण युगके चित्रमें युद्धरत योद्धा घुड़सवार हैं। लखुनियाँ दरी (मिर्जापुर क्षेत्र) में घुड़सवारोंका चित्रांकन है। इसीप्रकार बाँदा जिलेके मानिकपुर स्थानके चित्रोंमें भी घुड़सवार चित्रित हैं। सिंधके किनारे मन्दोरी, गेदाब और घड़ियाला नामक स्थानोंमें चट्टानों पर युद्धरत सशस्त्र योद्धा घोड़े, ऊँट और हाथियों पर हैं।

अनुमान है कि सिन्धुघाटीके लोग घोड़ेसे परिचित नहीं थे। मोहन जोदड़ोकी ऊपरी सतहसे प्राप्त एक भोड़ी मूर्तिमें घोड़ेका नमूना है किन्तु यह पहचान सन्देहजनक है।

राजा या गृहस्वामी गाय और घोड़ोंको रखनेके लिये स्थान बनवाते थे, ऐसा अथर्ववेदमें वर्णन आता है (गोभ्यो अश्वेभ्यो नमो यच्छालयां विजायते, अथर्ववेद, ८९।३।३)। महाजनपद कालमें महलोंके पिछवाड़े ही अश्वशाला अथवा राजवल्लभ तुरंगोंकी मंदुरा भी थी। जैनियोंके अर्धमागधी आगम साहित्य (जो पाली साहित्यके समयका है) में हयसंघाड़के बनाये जानेका वर्णन है। सिन्धु सभ्यता और ऋग्वेदमें वर्णित पशु हाथी, सिंह और वृषभके साथ कहीं-कहीं तुरंग भी हैं।

चतुर्द्वीपी भूगोलकी प्रारम्भिक कल्पनामें पृथ्वीको चतुर्दल कमल माना गया। इसके मध्य बीज रूपमें सुमेरुपर्वत था। सुमेरुपर्वतके पूर्वमें भद्राश्व, दक्षिणमें भारत, पश्चिममें केतुमाल और उत्तर दिशामें उत्तर कुरु द्वीप था। भद्राश्वका अर्थ है—कल्याणकारी अश्व। यह उस श्वेत वर्णके अश्वकी याद दिलाता है जो चीन देशमें पूजनीय भी था, साथ ही इसे पुण्य चिह्न भी माना गया। चीन देशकी अनेक सभ्य जातियाँ भद्राश्व या श्वेत अश्वको अपना मांगलिक चिह्न मानती थीं। वहाँकी कलामें यह चिह्न सबसे महत्त्वपूर्ण है। इसी कारण चीनका नाम पुराणोंमें भद्राश्व हो गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बौद्ध परम्परामें इसप्रकारके अश्वको बलाहक कहा गया। बोधिसत्व भी एक बार बलहरस (वक्लभाश्व) की योनिमें जन्मे थे और उस रूपमें उन्होंने मृत्युके अन्धकूपमें पड़े हुये ५०० बानरोंका उद्धार किया था। यह कथा **बलहरस जातक** में दी हुई है। साथ ही, मथुराकी एक वेदिकाके स्तम्भपर इसका चित्रण भी है।

प्राचीन भारतीय कलामें ईहामृग या बहुविध आकृतिवाले रूपोंकी कल्पना की गई जिसमें सिंहव्याल, गजव्यालके साथ ही अश्वव्याल भी था। इनमें भिन्न मस्तकके भिन्न शरीरका जोड़ बैठाया जाता था। मध्यकालीन शिल्पग्रन्थोंमें उनकी संख्या १६ कही गयी है। प्रत्येकको १६ मुद्राओंमें अंकित किया गया है। इस प्रकार व्यालरूपोंकी संख्या २५६ तक पहुँची (अपराजित पृच्छा २३३।४।६, इति षोडश व्यालानि उक्तानि मुखभेदतः)। चतुर शिल्पी और दन्त्य लेखक इसकी सुन्दरताको बढ़ाते हुये अपनी प्रतिभाको भी दर्शाते थे। प्राचीन कपिशा (बेग्राम) से प्राप्त दन्त फलकोंपर इन व्यालोंका सटीक चित्रण हुआ है जो कुषाण कालीन गन्धार कलामें लोकप्रिय था। भरहुत, सांची और मथुराकी कलामें ईहामृग पशुओंकी सजावट है। अधिकतर शकलोगोंको ऐसे रूपोंसे विशेष रुचि थी। इसीसे मिलते-जुलते अलंकरणोंको वृषभ-मच्छ, हरितमच्छ इत्यादिके साथ ही अश्वमच्छ रूपमें मथुराकी वेदिकाके फुल्लोंमें दिखाया गया है। भारतीय पुराणोंकी साक्षीके अनुसार, ये सब रुद्रके प्रथम गण हैं जिनके मुख और अंग अनेक रूपोंमें विकृत हैं। प्रत्येक मनुष्यके चेहरेपर नराकृति है किन्तु उसके पीछे अपने-अपने स्वभावके अनुसार पशु-पक्षियोंके छिपे हुये चेहरे समझना चाहिये। जिसका जैसा स्वभाव उसका वैसा मुखड़ा, यही इन भेदोंका सूत्र है। इस कल्पनाका मूल ऋग्वेदमें पाया जाता है।

बौद्ध साहित्यमें अश्वमुखी यक्षीका उल्लेख आया है (पदकुसल मागव जातक)। सारनाथके सिंह स्तम्भ,, सिंह संघाटके सदृशकी कार्लेके चैत्यघरमें स्तम्भ शीर्षकोंपर हयसंघाट उत्कीर्ण है (पीठ सटाकर बैठे हुये पशुओंको संघाट कहते हैं)।

वैदिक अभिप्रायमें प्रथम चार अश्वोंके रथ पर सूर्यको आरूढ़ दिखाया गया है। पीछे अश्वोंकी संख्या सात तक हो गयी। बोधगया वेदिका पर चतुरश्व योजित रथपर बैठे हुए सूर्यका चित्रण है। भाजा गुफामें द्वितीय शती पूर्वकी एक मूर्त्ति चतुरश्वयोजित रथमें बैठी हुई है। मथुराकी कुषाणकलामें सूर्यके रथमें दो या चार अश्व दिखाये गये हैं। यही परम्परा गांधार और सासानी कलामें मिलती है। काबुलके समीप खोरखानासे प्राप्त संगमरमरकी सूर्य मूर्त्तिके रथमें चार घोड़े जुते हैं। गुप्तकालसे लेकर मध्यकालके सूर्यके रथोंमें सात घोड़े पाये जाते हैं।

शैशुनाग-नन्द युग (छठी श० ई० पू० से चौथी श० ई० पू०) की कलामें राजघाटसे प्राप्त चकियामें (जो अब लखनऊ संग्रहालयमें है) मातृदेवीके बाईं ओरका पशु अश्व है। पटनासे प्राप्त चकिया पर तीन समान केन्द्रित वृत्त हैं। इसके दूसरे वृत्तमें १२ पशुओंमें अश्व भी अंकित है। मुर्तजीगंजकी चकियापर भी अश्वका चित्रांकन है। ये चकिया मातृपूजाके लिये प्रतीकात्मक चिह्न या मन्त्र थे।

मौर्यकालके (३२५-१८४ ई० पू०) लुम्बिनी उद्यान (वर्तमान रुम्बिनि देई) के स्तम्भपर अश्व शीर्षक था। युवाङ् चाङ्के अनुसार, यह बिजली गिरनेसे बीचमें टूट गया था। यहाँ भगवान बुद्ध शाक्य मुनिका जन्म हुआ था (हिदे बुधे जाते शक्यमुनि ति)।

स्तम्भ शीर्षकोंपर चार महा आजानेय पशुओंकी मूर्त्तियाँ पायी जाती हैं। चार पशु—अश्व, सिंह, वृषभ और हाथी हैं। इन चार पशुओंकी परम्परा सिन्धुघाटीकी प्राचीनताको छूती हुई १९वीं शताब्दी तक आती है। इसका देशगत विस्तार भारतसे लेकर लंका, श्याम, वर्मा और तिब्बत तक मिलता है। बौद्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्तम्भोंके अलंकारणोंमें इनका बहुलतासे प्रयोग है और महावंशमें इन्हें **चतुष्पद पंक्ति** कहा गया है। स्तूपकी चन्द्रशिलाओंपर, अनुराधापुरके गुप्तकालीन स्तूपोंकी चन्द्रशिलाओंपर, १८वीं शतीके राजस्थानी चित्रमें (जो इस समय दिल्ली संग्रहालयमें है) और १९वीं शतीके बंगालसे प्राप्त एक कन्थे (इस वक्त भारत कला भवनमें) आदिपर इस चतुष्पद पंक्तिका सुन्दर अंकन है। कहते हैं, जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि। अतः बौद्ध कल्पनामें ये चार पशु अनवतप्त सरोवरोंके चार द्वारोंके रक्षक हैं जहाँसे चार महानदियों-का उद्गम है। वाल्मीकि रामायणमें इन्हें रामके अभिषेकके लिये एकत्र मांगलिक द्रव्योंमें गिना जाता है। केशवदासने (१७वीं शती) रामके राजप्रसादके चार द्वारों पर इनका उल्लेख किया है। डा० वासुदेवशरण अग्रवालने अपनी पुस्तक **चक्रध्वज** में लगभग पचास अवतरण और उल्लेख दिये हैं। आपके चिन्तनके अनुसार लोक भावनामें इन चारों पशुओंको पवित्र समझा जाता था और इनके पीछे जैन, बौद्ध और ब्राह्मण-इन तीनों महान धर्मोंकी मान्यताका भी बल था।

शुंगकालीन (१८४-७२ ई० पू०) भरहुत स्तूपकी तोरणवेदिकापर अश्वरथ अंकित है। इस कालमें पशुओंकी आकृतियाँ दो प्रकारकी प्राप्त हुई हैं एक स्वाभाविक और दूसरी कल्पित जैसे आकाशचारी अश्व अर्थात् सपक्ष अश्व। उड़ीसाकी खण्डगिरी-उदयगिरीकी गुफायें भी इसी कालकी हैं। इनमें रानीगुफाकी शोभापट्टीमें उत्कीर्ण सात चित्र राजेन्द्रलाल मित्र कृत **उड़ीसाके प्राचीन अवशेष, खण्ड २** नामक ग्रन्थमें प्रकाशित किये गये हैं। इन चित्रोंमें दृश्य चारमें पट्टके पहले भागमें तीन व्यक्ति, एक अश्व, उसे थामे हुए एक सूत है। राजाकी मृगयाका दृश्य-दुष्यन्त-शकुन्तला कथाका दृश्य इस रोचक दृश्यका सारा रूपक राजा दुष्यन्तका ऋषि कण्वके आश्रममें आगमन, शकुन्तलाको देख उसपर मोहित होना है। गणेश गुटकामें पर्याण और आभूषणोंसे सुशोभित घोड़ेका दृश्य भी अंकित है। मञ्चपुरी गुफामें तोरणपर अलफ मुद्रामें अश्वारोही मूर्त्तियाँ उत्कीर्ण है। इसीकी अनुकृतिपर आगे चलकर व्यालतोरणकी मूर्त्तियाँ बनने लगी जिसका उदाहरण सारनाथमें मिलता है। अनन्त गुफामें सूर्यकी एक विशिष्ट मूर्त्ति है जो अपनी दो पत्नियोंके साथ चार घोड़ोंके रथपर आरूढ़ है।

शुंगकालके आरम्भिक काल (लगभग दूसरी श० ई० पू०) का केन्द्र भाजा बना। भाजाके बिहारके मुखमण्डपके पूर्वी छोरके प्रवेशद्वारके दोनों ओरकी मूर्त्तियोंमें एक ओर बाईं तरफ एक राजा चार घोड़ोंके रथ पर सवार है। पीछे चँवर और छत्र लिये दो अनुचर स्त्रियाँ भी हैं। पीतलखोराकी गुफा नं० ४ में दाहिनी ओर हाथीके बराबर एक अश्वारोहीकी काय परिमाण मूर्त्ति पर दानदाताका नाम खुदा है। यह दूसरी शताब्दीकी मालूम पड़ती है। बेडसाकी गुफाओंके स्तम्भों पर हयसंघाटकी मूर्त्तियाँ हैं।

पेल्लरूनदीके तट पर स्थित जग्गयपेट्टके महास्तूपके एक पादुकापट्ट पर सुसज्जित अश्वकी आकृति उत्कीर्ण है।

शक सातवाहन (प्रथम, द्वितीय शती) कालके हैदराबादको कोण्डापुरसे प्राप्त खिलौनोंमें अश्व भी है जो क्योलिन नामक सफेद मिट्टीका बना है।

पहाड़पुरके फलकों पर बंगालके पशु-पक्षी और वृक्ष-वनस्पतियोंका घनिष्ट अंकन है। उनमें हाथी घोड़ा, चम्पक और कदम्ब इत्यादि हैं।

महास्थान (जिला बोगरा) से भी कुछ फलक प्राप्त हुये हैं जो उत्तर गुप्तकालीन कालके नमूने हैं। एक मिट्टीके पात्र पर चार घोड़ोंके रथ पर बैठा व्यक्ति तीर-धनुषसे मृग झुण्ड पर बाण बरसा रहा है। १६वीं-सत्रहवीं शताब्दीमें पुर्तगाली सिपाही बंगालके भीतरी गाँवमें जाने लगे। स्थानीय कुम्हारोंने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनकी आकृतियोंको खिलौनोंमें उतारा। जैसोरसे प्राप्त एक फलक पर पुर्तगाली सिपाही घोड़ेपर सवार है। उसके वायें हाथमें घोड़ेकी रास और दाहिनेमें चाबुक है। प्राचीन मांगलिक प्रतीक मूर्त्तियोंकी रूप कल्पनामें अश्व भी स्वीकृत था।

अश्वमेधकी परम्परा इस देशमें अति प्राचीन है ऐतिहासिक कालमें भी पुष्पमित्र शुङ्ग, समुद्रगुप्त, कुमारगुप्त आदिने अश्वमेध किये। समुद्रगुप्तके अश्वमेध-यज्ञकी प्रतिकृति भी मिल गयी हैं जो लखनऊके संग्रहालयमें रखी है। भारतवर्षका दिग्विजय कर समुद्रगुप्तने अश्वमेध-यज्ञ किया था। उसने अश्वमेध स्मारक दिनार (सोनेका सिक्का) चलाया। दक्षिणके अनेक राजाओंने भी अश्वमेध किये। कन्नौजके गहड़वाल राजा जयचन्द्रके भी अश्वयज्ञका उल्लेख हुआ है। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यके बेटे कुमारगुप्त प्रथमने चालीस वर्षों तक राज्य किया और सोनेका सिक्का चलाया। सिक्केमें राजा घोड़े पर सवार हैं।

भारतके बीसवीं सदीके ताम्बेके पैसे पर पटमें भी अश्वाकृति थी। आहत मुद्राओं पर चिह्नोंके दूसरे वर्गमें चार महा आजानेय पशुओंका चित्र है। चतुष्पाद पंक्तिका प्रतीक बौद्धधर्मके उदयसे बहुत पहले ही प्रचलित हो चुका था।

इस प्रकार कमल और अश्वका भारतीय संस्कृतिके मांगलिक प्रतीकोंमें मुख्य स्थान था।

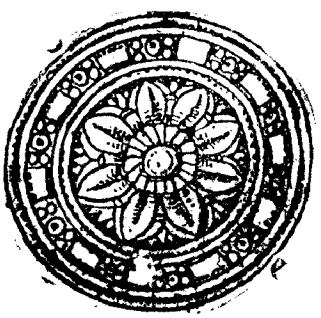

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org